

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 28: ज्ञान-योग

5 October 2026



उद्धव को भक्ति-पूर्ण पूजा की शिक्षा देने के पश्चात्, भगवान् श्रीकृष्ण अब उनके सम्मुख समस्त ज्ञान का गहनतम रहस्य खोलते हैं — एक ही अखण्ड आत्मा जो हर प्राणी में समान रूप से विद्यमान है, निन्दा-स्तुति तथा सुख-दुःख का वह संसार जो केवल एक अटूट स्वप्न है, और वह ज्ञान जो अन्ततः भगवान् की शरण में ही सुरक्षित विश्राम पाता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। उद्धव को पूजा-विधि सिखाकर, भगवान् अब भीतर की ओर मुड़ते हैं, और समस्त सत्त्यों में सर्वोच्च सत्य उद्घाटित करते हैं: हर प्राणी में समान रूप से चमकती एक ही आत्मा, द्वैत का वह स्वप्न जो अभी टूटना शेष है, और वह ज्ञान जो अन्ततः केवल भगवान् के चरणों में ही विश्राम पाता है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)

- अध्याय: 28 (अष्टाविंश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: ज्ञान-योग — ज्ञान का मार्ग
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका
- केन्द्रीय विषय: समस्त प्राणियों में एक आत्मा, द्वैत की अवास्तविकता, आत्मा साक्षी के रूप में अपरिवर्तनशील, तथा योग की प्रत्येक बाधा के उपचार के रूप में भक्ति
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 28, श्लोक 1-44
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

पिछले प्रवचन में भगवान् ने उद्धव को अपने सगुण विग्रह की पूजा-विधि सिखाई थी — मन्त्र, स्नान-श्रृंगार, यज्ञाग्नि तथा भक्तिपूर्ण नैवेद्य — यह घोषित करते हुए कि ऐसी पूजा भगवान् के साथ परम एकता प्रदान करती है। बाह्य पूजा का यह उपदेश पूर्ण करके, भगवान् अब ज्ञान की अन्तरंग पूजा की ओर मुड़ते हैं: समस्त प्राणियों में एक आत्मा का दर्शन।

एक ही आत्मा, सभी प्रकृतियों के पीछे

भगवान् ने पुनः आरम्भ किया, उद्धव को अपनी अब तक की सर्वाधिक गहन शिक्षा देते हुए।

श्रीभगवानुवाच

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् ।

विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ १ ॥

śrī-bhagavān uvāca para-svabhāva-karmāṇi na praśaṁsen na garhayet viśvam ekātmakaṁ paśyan prakṛtyā puruṣeṇa ca

अर्थ: भगवान् ने कहा: प्रकृति तथा पुरुष के संयोग से उत्पन्न इस विश्व को सारतः एक देखते हुए, मनुष्य को किसी दूसरे की प्रकृति तथा कर्मों की न स्तुति करनी चाहिए, न निन्दा। (स्कन्ध 11, अध्याय 28, श्लोक 1)

जो दूसरे के मन की प्रवृत्ति की प्रशंसा या निन्दा करता है, वह उस द्वैत से चिपककर अपने उद्देश्य से भटक जाता है। जैसे निद्रा से अभिभूत आत्मा जाग्रत संसार से स्वप्न में, और फिर सुषुप्ति में डूब जाती है, वैसे ही जो एक सत्य के स्थान पर अनेकता देखता है, वह विक्षेप में और अन्ततः अज्ञान में गिर जाता है। द्वैत के बीच न कोई स्थिर शुभ है, न स्थिर अशुभ, क्योंकि जो वाणी कहती है या मन सोचता है, वह मिथ्या ही है। जल पर प्रतिबिम्ब, प्रतिध्वनि, शंख की वह चमक जिसे चाँदी समझ लिया जाता है — ये असत्य होकर भी हमें वैसे ही प्रभावित करते हैं जैसे सत्य हों; शरीर भी, असत्य होकर भी, विलीन होने तक भय उत्पन्न करता रहता है।

यह सम्पूर्ण विश्व स्वयं आत्मा है

यह विश्व, भगवान् ने आगे कहा, परम आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जो समस्त रूप धारण करने में सक्षम है।

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः ।

त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥ ६ ॥

ātmaiva tad idaṁ viśvaṁ sṛjyate sṛjati prabhuḥ trāyate trāti viśvātmā hriyate haratīśvaraḥ

अर्थ: यह विश्व आत्मा ही है, जो सृजन करता है और सृजित होता है, रक्षा करता है और रक्षित होता है, संहार करता है और संहृत होता है — एक साथ कर्ता भी तथा भोग्य भी। (स्कन्ध 11, अध्याय 28, श्लोक 6)

उस एक आत्मा से परे, ज्ञानी जन कभी दूसरी सत्ता नहीं पाते; उसमें सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय की प्रतीति निर्मूल है, और द्रष्टा, दृश्य तथा दर्शन की त्रिविधता माया का ही कार्य है, जो तीन गुणों से रचित है। जो इस ज्ञान में परिपक्व होता है, वह किसी की न निन्दा करता है न स्तुति, अपितु सूर्य के समान स्वतन्त्र विचरण करता है, प्रत्यक्ष, अनुमान, शास्त्र तथा अपने अनुभव से यह जानते हुए कि आत्मा से पृथक् यह संसार असत्य है, और उसमें अनासक्त होकर विचरण करता है।



भगवान् प्रकट करते हैं कि यह विश्व परम आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जो सृजन करता है और सृजित होता है, रक्षा करता है और रक्षित होता है (श्लोक 6)।

उद्धव का प्रश्न — जन्म-मृत्यु किसे होता है?

यह सुनकर, उद्धव ने एक सच्चे कौतुक से उत्पन्न प्रश्न पूछा।

श्रीउद्धव उवाच

नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदृश्ययोः ।

अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ॥ १० ॥

śrī-uddhava uvāca naivātmāna na dehasya saṁsṛtir draṣṭṛ-dṛśyayoḥ anātmā-sva-dṛśor īśa kasya syād upalabhyate

अर्थ: उद्धव ने कहा: हे प्रभु, जन्म-मृत्यु का चक्र न द्रष्टा आत्मा को होता है, न दृश्य शरीर को; तो फिर यह किसको अनुभव होता है? (स्कन्ध 11, अध्याय 28, श्लोक 10)

आत्मा, उन्होंने आगे कहा, अविनाशी, निर्गुण, शुद्ध तथा अग्नि के समान स्वयंप्रकाश है; शरीर काष्ठ के समान जड़ है। तो इन दोनों में से, जन्म से जन्म तक वास्तव में कौन भटकता है?



उद्धव एक गहन प्रश्न पूछते हैं — यदि आत्मा द्रष्टा है और शरीर केवल दृश्य, तो जन्म-मृत्यु का यह चक्र वास्तव में किसे होता है? (श्लोक 10)।

वह स्वप्न जो अभी नहीं टूटा

भगवान् ने अत्यन्त कोमलता से उत्तर दिया। जब तक अविवेकी आत्मा शरीर, इन्द्रियों तथा प्राणों के सम्पर्क में रहती है, तब तक यह सुख-दुःख का चक्र फल देता रहता है, यद्यपि इसमें कोई यथार्थता नहीं है। यह विषयों में लीन आत्मा के लिए उसी प्रकार नहीं रुकता जैसे स्वप्न के कष्ट स्वप्न टूटने तक नहीं रुकते, यद्यपि उसमें कुछ भी, स्वप्न-शरीर तक भी, सत्य नहीं है। वही स्वप्न जो अजागृत को पीड़ित करता है, जाग चुके को नहीं सता सकता; इसी प्रकार जो अज्ञानी को कष्ट देता है, ज्ञानी को स्पर्श नहीं करता। शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ तथा तृष्णा, जन्म और मृत्यु भी, केवल अहंकार के हैं, आत्मा के कभी नहीं। शरीर, इन्द्रिय तथा मन के पीछे छिपी हुई आत्मा, जो स्वयं को उनसे एक समझती है, जीव कहलाती है, और काल के अधीन संसार में भ्रमण करती है — जब तक कि चिन्तनशील आत्मा, भक्ति से तीक्ष्ण हुई ज्ञान की तलवार से इस निर्मूल अहंकार-वृक्ष को काटकर, समस्त तृष्णा से मुक्त होकर विचरण नहीं करती।

वह सोना जो अनेक नामों से पहचाना जाता है

सच्चा ज्ञान, भगवान् ने कहा, आत्मा तथा अनात्मा के स्पष्ट विवेक में ही है, जो वेद, महात्माओं के वचन, तर्क तथा अनुभव से प्राप्त होता है। ऐसा विवेक एक निश्चय देता है: जो सृष्टि से पहले था और प्रलय के बाद रहेगा, वही बीच में भी है — और वह ब्रह्म है, इस विश्व का कारण तथा प्रकाशक।

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्
पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ।
तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं
नानापदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ १९ ॥

*yathā hiraṇyaṁ sv-akṛtaṁ purastāt paścāc ca sarvasya hiraṇ-mayasya tad eva madhye
vyavahāryamāṇaṁ nānāpadeśair aham asya tadvat*

अर्थ: जैसे सोना, आभूषण बनने से पूर्व तथा पिघलने के पश्चात्, वही सोना रहता है जबकि बीच में कुण्डल, कंगन आदि अनेक नामों से जाना जाता है, वैसे ही मैं इस विश्व से पहले तथा पश्चात् भी रहता हूँ, और इसके बीच में भी अनेक नामों से जाना जाता हूँ, क्योंकि यह सृष्टि मुझसे भिन्न कुछ नहीं है। (स्कन्ध 11, अध्याय 28, श्लोक 19)

वही अकेला सत्य है, जिससे मन की तीन अवस्थाएँ तथा यह त्रिविध संसार दृष्टिगोचर होता है, और जो तब भी बना रहता है जब यह भेद समाधि में विलीन हो जाता है। जो सृष्टि से पहले नहीं था और पश्चात् नहीं रहेगा, वह बीच में भी नाम-मात्र के अतिरिक्त सत्य नहीं है — क्योंकि कार्य कभी उस कारण से भिन्न नहीं होता जिससे वह उत्पन्न हुआ।



जैसे सोना, अनगढ़ हो या आभूषण में ढला, वही सोना रहता है, वैसे ही भगवान् इस विश्व से पहले, पश्चात् तथा इसके बीच भी अनेक नामों से विद्यमान हैं (श्लोक 19)।

बादलों के पीछे का सूर्य

इस विवेक से, तथा सद्गुरु की कृपा से, मनुष्य आत्म-साक्षात्कार के आनन्द से तृप्त होकर इन्द्रियों से विरत हो जाता है। शरीर — पृथ्वी, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि — जिस भी रूप में सजा हो, आत्मा कदापि नहीं है। तीन गुणों से बनी इन्द्रियों के विचलित होने से क्या हानि, या उनके द्वारा मुझे जान लेने से क्या लाभ? बादलों के एकत्र होने या छँट जाने से सूर्य को क्या लाभ या हानि? जैसे खुला आकाश वायु, अग्नि, वर्षा या धूल से अछूता रहता है, वैसे ही परम आत्मा उन मलिनताओं से कभी कलुषित नहीं होती जो शरीरासक्त जीव को संसार-चक्र में भटकाती हैं।

मन का अचिकित्सित घाव, और भक्ति की औषधि

फिर भी, भगवान् ने आगे कहा, माया-रचित विषयों की आसक्ति को धैर्यपूर्वक त्यागना आवश्यक है।

तथापि सङ्गः परिवर्जनीयो
गुणेषु मायारचितेषु तावत् ।
मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्
रजो निरस्येत मनःकषायः ॥ २७ ॥

tathāpi saṅgaḥ parivarjanīyo guṇeṣu māyā-raciteṣu tāvat mad-bhakti-yogena dṛḍhena yāvad rajo nirasyeta manaḥ-kaṣāyaḥ

अर्थ: फिर भी, माया द्वारा रचित प्रकृति के गुणों की आसक्ति को तब तक सावधानीपूर्वक त्यागना चाहिए, जब तक दृढ़ भक्ति-योग द्वारा मन का रजोमय मल दूर न हो जाए। (स्कन्ध 11, अध्याय 28, श्लोक 27)

जैसे असावधानी से उपचारित रोग बार-बार उभरकर नई पीड़ा देता है, वैसे ही जिस मन के विकार तथा पुराने कर्म अभी नहीं जले, और जो धन-परिवार से अभी चिपका है, वह अपूर्ण योगी को गिरा देता है। ऐसे साधक, देवताओं द्वारा रचित बाधाओं से बार-बार निराश होकर भी, पूर्व जन्मों के अभ्यास-बल से पुनः योग की ओर लौटते हैं, किन्तु अब केवल कर्मकाण्ड की ओर नहीं। अज्ञानी आत्मा किसी अदृश्य शक्ति से प्रेरित होकर मृत्युपर्यन्त कर्म करती है, सुख-दुःख में डोलती हुई; ज्ञानी आत्मा, उसी शरीर में स्थित होकर भी, वैसे नहीं डोलती, क्योंकि उसकी तृष्णा आत्म-साक्षात्कार के आनन्द में शान्त हो गई है।



भगवान् सिखाते हैं कि प्रकृति के गुणों की आसक्ति अन्ततः केवल दृढ़ भक्ति-योग के अभ्यास से ही दूर होती है (श्लोक 27)।

चलते हुए भी जागृत

जिसका मन पूर्णतः आत्मा में स्थित है, उसे यह भी नहीं भान रहता कि शरीर खड़ा है, बैठा है, चल रहा है या लेटा है। यदि ऐसा ज्ञानी इन्द्रियों के विषयों को देखता भी है, तो वह उन्हें आत्मा से अधिक सत्य नहीं मानता — जैसे जागा हुआ मनुष्य लुप्त हो गए स्वप्न को सत्य नहीं मानता। तीन गुणों से बना यह काया-मन का ताना-बाना, जो पहले आत्मा समझ लिया गया था, हे प्रिय उद्धव, अब ज्ञान के प्रकाश में विलीन हो जाता है — यद्यपि आत्मा को न ग्रहण किया जा सकता है, न त्यागा जा सकता है। जैसे सूर्योदय केवल अन्धकार को दूर करता है, कुछ नया उत्पन्न नहीं करता, वैसे ही मेरा साक्षात्कार केवल मन पर छाए अन्धकार को दूर करता है। आत्मा कभी छिपी नहीं है; वह स्वयंप्रकाश है, जन्म से परे, प्रमाण से परे, काल-स्थान से अबद्ध, वाणी के मौन होने पर भी एक अद्वितीय बनी रहती है। इस आत्मा में भेद की धारणा पूर्णतः मन का भ्रम है।

मार्ग की बाधाओं का उपचार

यदि अपूर्ण योगी के शरीर पर अचानक कोई विपत्ति आ जाए, तो यह है उसका उपचार। शीत-उष्ण को चन्द्र-सूर्य पर एकाग्रता से, वायु-विकार को आसनों से, तथा दुर्ग्रह या सर्प-जन्म बाधाओं को तप, मन्त्र तथा औषधि से दूर करना चाहिए।

कांश्चिन्मानुध्यानेन नामसङ्कीर्तनादिभिः ।

योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदान् शनैः ॥ ४० ॥

kāṁścin mamānudhyānena nāma-saṅkīrtanādibhiḥ yogeśvarānuvṛtṭyā vā hanyād aśubha-dān śanaiḥ

अर्थ: कुछ बाधाओं को — जो काम-क्रोध जैसे अशुभ फल देती हैं — मेरे अनुध्यान तथा मेरे पवित्र नामों के उच्च संकीर्तन द्वारा, और अन्य को, जैसे पाखण्ड तथा अहंकार, योग के आचार्यों की सेवा द्वारा, धीरे-धीरे शान्त करना चाहिए। (स्कन्ध 11, अध्याय 28, श्लोक 40)

कुछ साधक योग को केवल सिद्धियों के लिए अपनाते हैं; किन्तु ज्ञानी जन ऐसे लक्ष्य को महत्त्व नहीं देते, क्योंकि शरीर वृक्ष के फल के समान नाशवान् है। शरीर असाधारण रूप से स्वस्थ भी हो जाए, तो ज्ञानी उससे मोहित होकर अभ्यास नहीं छोड़ता; वह सदा भगवान् के प्रति समर्पित रहता है।



जूझते योगी की बाधाओं के लिए भगवान् उपाय बताते हैं — उनका अनुध्यान तथा उनके पवित्र नामों का उच्च संकीर्तन (श्लोक 40)।

अध्याय का समापन-वचन

इस सम्पूर्ण उपदेश को भगवान् ने एक अन्तिम, ज्योतिर्मय आश्वासन दिया, ज्ञान तथा भक्ति को एक ही प्रतिज्ञा में समेटते हुए।

योगचर्यामिमां योगी विचरन् मदपाश्रयः ।

नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ॥ ४४ ॥

yoga-caryām imāṁ yogī vicaran mad-apāśrayaḥ nāntarāyair vihanjeta niḥspṛhaḥ sva-sukhānubhūḥ

अर्थ: जो योगी मेरी शरण लेकर इस योग-अभ्यास को करता है, वह किसी भी बाधा से कभी विचलित नहीं होता; वह समस्त कामनाओं से मुक्त होकर सदा आत्म-साक्षात्कार के आनन्द में विश्राम करता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 28, श्लोक 44)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. एक आत्मा, हर प्रकृति में। विश्व को परमात्मा की एक अभिव्यक्ति मानते हुए, ज्ञानी किसी की प्रकृति की न स्तुति करता है न निन्दा, क्योंकि द्वैत से चिपकना अपने उद्देश्य से भटका देता है (श्लोक 1-2)।

2. वह स्वप्न जो अभी नहीं टूटा। विषयों में लीन आत्मा के लिए संसार का कष्ट उसी प्रकार बना रहता है जैसे अजागृत सोए हुए के लिए स्वप्न का कष्ट, और ज्ञान में जागते ही विलीन हो जाता है (श्लोक 3, 12-14)।
3. अहंकार-वृक्ष जड़ से कट जाता है। शरीर तथा मन से आत्मा का विवेक, शास्त्र, महात्माओं के वचन, तर्क तथा साक्षात्कार से प्राप्त होकर, उस निर्मूल अहंकार-वृक्ष को काट देता है जो आत्मा को अनन्त जन्म-मृत्यु में धकेलता है (श्लोक 16-18)।
4. अपरिवर्तनशील साक्षी। जैसे सूर्य बादलों से तथा आकाश वायु-ऋतु से अछूता रहता है, वैसे ही आत्मा शरीर तथा गुणों से सदा पृथक्, उनकी मौन साक्षी बनी रहती है (श्लोक 25-26, 31-35)।
5. ज्ञान को सुरक्षा केवल भक्ति में मिलती है। भगवान् उद्धव को केवल ज्ञान देकर नहीं छोड़ते; वे दिखाते हैं कि वह कहाँ सुरक्षित विश्राम पाता है। मन का रजोमल केवल दृढ़ भक्ति से ही समूल नष्ट होता है, और योगी को गिराने वाली बाधाएँ — काम, क्रोध, अहंकार — प्रयत्न से नहीं, अपितु भगवान् के स्मरण, नाम-संकीर्तन तथा शरण से दूर होती हैं। ज्ञान-योग भक्ति से विरोधी नहीं, अपितु उसी से पूर्ण होता है (श्लोक 27, 40, 43-44)।
6. भगवान् स्वयं उपचार बताते हैं। भगवान् रोग या प्रलोभन से जूझते साधक को एक धैर्यपूर्ण उपचार देते हैं — एकाग्रता, आसन, तप, और सबसे ऊपर उनका स्मरण — जिससे कोई सच्चा साधक आशा न छोड़े (श्लोक 38-41)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस प्रवचन में जो हृदय को स्पर्श करता है, वह केवल इसकी गहराई नहीं, अपितु इसकी कोमलता है। भगवान् उद्धव को केवल ज्ञान देकर छोड़ सकते थे — आत्मा एक है, संसार स्वप्न है, अहंकार एक वृक्ष है जिसे काट देना है। ऐसी शिक्षा, अकेली, शीतल लग सकती है। किन्तु कृष्ण उसे वहाँ नहीं छोड़ते। वे बार-बार सामान्य साधक की ओर मुड़ते हैं — पुराने स्वभाव से जूझता योगी, मार्ग में रोग से ग्रस्त व्यक्ति — और हर एक के लिए एक उपचार रखते हैं, जो अन्ततः वे स्वयं हैं। उनका नाम जपना, ध्यान करना, शरण लेना — ये द्वितीय-श्रेणी के अभ्यास नहीं, अपितु वे ही हैं जो ज्ञान को सुरक्षित रूप से थामने योग्य बनाते हैं। शरण-रहित सत्य भयभीत कर सकता है; भगवान् के आश्रय में स्थित सत्य एक शान्त स्वतन्त्रता बन जाता है — यही वह उपहार है जो कृष्ण उद्धव को, और हमें भी, देते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, हर व्यक्ति में वह एक प्रकाश देखने का प्रयास करें जो समान रूप से चमकता है, और यह दृष्टि स्तुति या निन्दा की इच्छा को शान्त कर दे। जब भी कोई चंचल कामना या क्रोध की लहर उठे, रुकें और वही करें जो भगवान् यहाँ सिखाते हैं: धीरे से उनका पवित्र नाम जपें, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय,” और मन को, क्षण भर के लिए ही सही, उस स्मरण में शान्त होने दें — ज्ञान जो भक्ति में सुरक्षित रूप से थमा हुआ है।

उपसंहार

यह प्रवचन उद्धव को, और हमें भी उनके साथ, ज्ञान-मार्ग के शिखर की ओर ले जाता है। भगवान् सिखाते हैं कि एक अखण्ड आत्मा समस्त विश्व में व्याप्त है, कि हम एक-दूसरे को जो स्तुति-निन्दा देते हैं वह भ्रम पर आधारित है, और कि संसार का कष्ट, स्वप्न के कष्ट के समान, केवल जागने तक रहता है। अनेक आभूषणों में ढला सोना तथा अविचलित सूर्य के सम्मुख गुजरते बादलों के माध्यम से, वे दिखाते हैं कि आत्मा सदा शरीर तथा गुणों से मुक्त, उनकी मौन साक्षी बनी रहती है। फिर भी वे इस ज्ञान को अकेला नहीं छोड़ते; बार-बार जूझते साधक की ओर मुड़कर

सच्चे उपचार के रूप में अपना ही स्मरण देते हैं — ध्यान, नाम-संकीर्तन, चरण-शरण। इस प्रकार यह अध्याय वहीं समाप्त होता है जहाँ समस्त सच्चा ज्ञान समाप्त होना चाहिए: भगवान् में प्रेमपूर्ण आश्रय में, जहाँ कोई बाधा उस व्यक्ति को अन्ततः पराजित नहीं कर सकती जो उन पर आश्रित है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

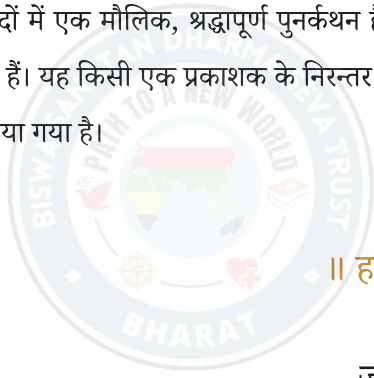
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, अष्टाविंश प्रवचन, पृष्ठ 648-654।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।



॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-28-jnan-yog-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट